WWJMRD 2018; 4(2): 299-301
www.wwjmrd.com
International Journal
Peer Reviewed Journal
Refereed Journal
Indexed Journal
UGC Approved Journal
Impact Factor MJIF: 4.25
E-ISSN: 2454-6615

**मनोज कुमार**
(शोध–छात्र)
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृतिएवं पुरातत्त्व विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र हरियाणा
भारत

# सातवाहन कालीन उद्योग एवं व्यवसाय

## मनोज कुमार

**सारांश**
सातवाहन काल में अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार व्यापारएवं वाणिज्य को बनाया गया था। लेकिन व्यापारएवं वाणिज्य भौतिक कारकों की उपस्थिति के बिना संभव नहीं हो सकता। अतः कहा जा सकता है कि सातवाहन काल में साम्राज्य की समृद्धि का मुख्य कारण व्यापार वाणिज्य मात्र नहीं बल्कि उसे अस्तित्व प्रदान करने वाले तत्व अर्थात उद्योगएवं व्यवसाय थे। प्रस्तुत शोध–पत्र में इन्हीं उद्योगएवं व्यवसायों पर प्रकाश डाला जाना अपेक्षित है। व्यापार में उन्हीं चीजों को शामिल किया जाता था जो समाज की आवश्यकतापूर्ति में सहायक हों। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जो भी उद्यम, उद्योग, प्रयास और प्रयत्न किये गये उन्हें वाणिज्य, उद्योग, व्यवसाय, धन्धा, शिल्प, विधा, विज्ञानएवं कला के नाम से अभिहित किया गया। भोजन जैसी मूलभूतएवं अपरिहार्य आवश्यकता के अतिरिक्त सभ्यता के विकास के अन्तर्गत जिन अन्य वांछित पदार्थों की प्राप्ति के लिए उद्यम किये गये, उनका विस्तार विभिन्न व्यवसायों के रूप में हुआ। सातवाहन काल में इन व्यवसायएवं उद्योगों में बहुत विविधता तथा विशिष्टता शामिल थी जो परम्परा के साथ–साथ अभिनव तत्वों को भी समाहित किये हुए थे। इन सभी व्यवसायों को थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आज भी देखा जा सकता है।

**शब्दार्थः** शर्करा–शक्कर या चीनी, कार्पासिक–कपास के व्यवसाय से सम्बंधित, चर्म–चमड़ा

**प्रस्तावनाः** सातवाहन काल के प्रमुख उद्योगएवं व्यवसायों का अध्ययन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता हैः–

**(प) वस्त्र–उद्योगः–** वस्त्र उद्योग विश्व की आर्थिक संरचना का प्रथम मानुषी उद्योग है।[1] सातवाहन युग सांस्कृतिक सम्मिश्रण के साथ ही आर्थिक, विशेषकर व्यापारिक विस्तार और आयात–निर्यात का काल होने से इस समय वस्त्रोद्योग का भी पर्याप्त विकास हुआ। इस युग में सूती वस्त्रों का अधिक प्रचलन हो गया था। उत्तम कपास पैदा करने हेतु दिव्यावदान[2] में कपास के खेत का वृहत उल्लेख है। कार्पासिकों और बुनकरों की अपनी श्रेणियाँ होती थी।[3]

इस काल में उज्जैन, तगर, कृष्णापल्ली और तंजौर में आर्गटितिक नामक मलमल बुना जाता था, जिसका यह यूनानी नाम चोलों की राजधानी उरैयुर में बनने से पड़ा था। मसालिक (मुसलीपटनम) में भी मलमल बुने जाने का उल्लेख है।[4] शाफ के अनुसार 'गेजेंटिक' नामक मलमल सर्वोत्तम माना जाता था। ढ़ाका के वस्त्रोद्योग में इसका प्रमुख स्थान था।[5] गेंजेटिक का अर्थ कुछ विद्वानों ने काशी का मलमल स्वीकारा है।[6] पेरिप्लस में आया है कि इस काल में निर्मित रेश्मी वस्त्र सिन्धु नदी पर बारबेरिकोन बन्दरगाह से निर्यात होते थे। रेश्मी वस्त्र मुजेरिस, नेलसिण्डा तथा मालाबार और अन्य बाजारों में गंगा के मुहाने और पूर्वी समुद्री तट से होकर यहाँ पहुँचते थे।[7]

**(पप) गन्ध व्यवसायः** भारतीय संस्कृति और सभ्यता प्रकृति प्रदत्त वरदानों से सदा सुवासित रही है। प्रकति की अनुकृति को संस्कृति के रूप में स्थापित करने का सतत प्रयत्न भारतीय जनों ने किया है। नितांतएकाकी अरण्य को अपने सुगन्ध से सुवासित करने वाले पुष्पों की खेती यहां शुरू से ही की जाती रही है। अनायास ही उगे हुए जंगली फूलों को मानव ने उपयोगिता की दृष्टि से सोचा और प्रकृति प्रदत्त सुगन्ध सदैव समान रूप से जीवन को मिलती रहे, इसके लिये जो भी प्रयास किया गया, वहएक व्यापारिक और व्यावसायिक प्रयास था।[8]

सातवाहन काल में गन्धिक व्यवसाय का जितना विकास हुआ, उतना उसके पूर्ववर्ती कालों में नहीं हो पाया।

इसका मुख्य कारण यह था कि इस काल में भारत के साथ ही विदेशों में भी सुगन्धित पदार्थों की मांग बढ़ गई थी। इससे व्यावसायिकएवं व्यापारिक प्रगति को बढ़ावा मिला, जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेशों में भारतीय सुगंधित पदार्थों के निर्यातएवं प्रसाधनिक वस्तुओं की मांग से विदेशी स्वर्ण मुद्राऐं बड़ी मात्रा में सातवाहन साम्राज्य में आने लगी।[9]

**(पपप) शर्करा (चीनी) उद्योगः** प्राचीन भारतीय जनों ने प्रकृति प्रदत्त पदार्थो से अपने जीवन को मधुर बनाने का प्रयास किया। अपने प्रयास क्रम में वे निरंतर नूतन शोधों से जीवन को सम्पूरित करने के अनेकशः उद्यम और उद्योग करते रहे।

**Correspondence:**
**मनोज कुमार**
(शोध–छात्र)
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृतिएवं पुरातत्त्व विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र हरियाणा
भारत

1.वही
2.दिव्यावदान, पृ. 212
3.महावस्तु अ. 3, पृ. 113
4.शाफ–द पेरिप्लस ऑफ दएरिथ्रियन सी, पृ. 41, 42, 46
5.शाफ–पूर्वोक्त, पृ. 10, 47
6.मोतीचन्द्र–प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ. 94
7.वार्मिंग्टन–कामर्स बिटविन इण्डियाएण्ड द रोमनएम्पायर, 212; शाफ–पूर्वोक्त, पृ. 273–278
8.नन्दजी, राय – पूर्वोक्त, पृ. 32
9.नन्दजी, राय – पूर्वोक्त, पृ. 36

आधुनिक चीनी उद्योग हमें आधुनिक वैज्ञानिक विधा काएक अवदान प्रतीत होता है, परन्तु गवेषणात्मकएवं अनुसंधानात्मक दृष्टि से जब हम प्राचीन भारतीय वाड्.मय में प्रवेश करते हैं, तो यह ज्ञात होता है कि ईख और उससे निर्मित गुड़ और शर्करा उद्योग का आविष्कार प्राचीन भारत में हो चुका था, जिसका विस्तार हम आधुनिक चीनी उद्योग के रूप में पाते हैं।[10]

सातवाहन काल में विदेशियों, विशेषकर यूनानियों का भारतीय ईख के प्रति विशेष आकर्षण यह प्रमाणित करता है कि उन्हें ईख के संबंध में प्रथम परिचय संभवतः भारतीय अभियानों के समय हुआ था।[11] प्लिनी ने अरेबियन चीनी की अपेक्षा भारतीय चीनी को अत्युत्तम माना है।[12] भारतीयों द्वारा फाणित (राब), गुड़, शर्करा, खांड तथा शर्करामोदक आदि शक्कर से बने हुए मिष्ठान तथा अन्य अनेक प्रकार के शर्करा मिश्रित पदार्थों का निर्माण और विक्रय चीनी उद्योग की विशिष्ट विधाओं, प्रक्रियाओंएवं प्रविधियों तथा अन्तर्देशीय व्यापार को प्रमाणित करता है।[13]

उपुर्यक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत में चीनी उद्योग विकसित स्थिति में था, जिससे कतिपय अन्य व्यवसायों का भी उद्भव हुआ।

(पअ) **मद्य–व्यवसायः** सातवाहन काल में मद्य–व्यवसाय के अन्तर्गत विदेशी शराबों का भी प्रचलन देश में हुआ। भारत में विदेशी शराबों की मांग यद्यपि मौर्य युग से ही रही है, किन्तु विदेशी जातियों के भारत में आने से उनकी मांग और भी बढ़ गई। देश और काल की परिस्थितियों से बाध्य होकर स्वदेशी और विदेशी शराब निर्माण, प्रविधि और प्रकार में समन्वय स्थापित हुआ। अरिकामेडु के पुरातात्विक उत्खननों से रोमन शैली के पात्र 'एम्फोरा' प्राप्त हुए हैं जिनमें शराब भर कर लाई जाती थी। ये साक्ष्य मद्य–व्यवसाय के प्रचलन की पुष्टि करते हैं।[14]

**(अ) काष्ठ उद्योगः**

प्राचीन भारत में ही काष्ठ का विविध उपयोग प्रारंभ हो गया था। भारतीय जनों ने प्रकृति प्रदत सुलभ काष्ठ को अपने विस्तृत जीवन के लिए विविध संसाधनों के रूप में स्थापित करते हुए जनसंख्या की अभिवृद्धि, नगरों की स्थापना, वाणिज्य, व्यापार के प्रवर्धन आदि की दृष्टि सेएक पृथक काष्ठ उद्योग के रूप में उद्योगों की श्रृंखला में प्रतिष्ठापित किया।[15] विवेच्यकाल में व्यापारिक उन्नतिएवं गमनागमन के साधनों में शकट, रथयान, नाव[16] आदि का विशेष महत्व तो था ही साथ ही बैलगाड़ी के महत्त्व से भी इंकार नहीं किया जा सकता। सातवाहन अभिलेखों में काष्ठ–निर्मित शकरदान का भी उल्लेख है।[17] इसके अतिरिक्त अश्वरथ, शिविका आदि परिवहन और व्यापारिक आयात–निर्यात के साधन थे, जो काष्ठ निर्मित ही होते थे।[18]

पेरिप्लस[19] में वर्णन आया है कि तमिल तट परएक बहुत विशालकाय पोताश्रय था। सातवाहन शासकों की मुद्राओं पर भी जहाजों के मनोरंजक चित्रण मिले हैं। रैप्सन[20] के अनुसार चोलमंडल में मद्रास और कुडुलोर के बीच यज्ञश्री सातकर्णी के जहाज छाप के सिक्के प्राप्त हुए है। इसमें संदेह नहीं है कि यह जहाज तत्कालीन काष्ठ उद्योग के प्रवर्धन का प्रतीक है, जिसमें सातवाहन साम्राज्य का व्यापार द्वीपान्तरों तक होता था।[21]

**(अप) चर्म उद्योगः**

यह सर्वविदित है कि प्राचीन भारतीय वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत अपनी योग्यताएवं क्षमता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जीवन के लिये अनेक व्यवसायों से जीविकोपार्जन करता था। विभिन्न उद्योगों को करने वाले लोग भिन्न–भिन्न नामों से पुकारे जाते थे।ऐसे ही व्यवसायों में चर्म–कर्म करने वाले लोगों केएक वर्ग ने चर्म उद्योग विकसित किया जिन्हें चर्मकार की संज्ञा प्रदान की गई, जो चमड़े की वस्तुऐं बनाते थे।[22] बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि इस युग में चर्म निर्मित वस्त्र और आसन का प्रयोग किया जाता था। दक्षिणापथ में आस्तरण तथा वस्त्र के लिए बकरों, भेड़ों और हिरणों की खालों का उपयोग होने का उल्लेख मिलता है।[23]

पेरिप्लस के अनुसार सिन्धु नदी पर बारबेरिकन नामक बंदरगाह से भारतीय चमड़े और चीनी बाहर भेजे जाते थे। पेरिप्लस[24] के लेखक ने रंगीन तांत और चमड़ा रोम भेजने का उल्लेख किया है। नारद स्मृति से पता चलता है कि ब्राह्मणों के लिए चर्म विक्रय, चर्म व्यवसाय–व्यापारादि आपद्धर्म के अन्तर्गत भी वर्जित कर दिया गया था।[25] यद्यपि सातवाहन काल में नवीन भेष–भूषा, भाण्ड, गृहोपकरण आदि का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर अप्रतिम रूप से पड़ा परन्तु विदेशी संस्कृतियों के अनुकरण से नवीन वस्तुओं का निर्माण भी प्रारंभ हुआ। भारतीय कला कृतियों में विदेशी जूतों का चित्रण परम्परागत चर्म उद्योग के विकास काएक प्रमाण है।[26]

**(अपप) मणिकर्मः**

मणिकार की परम्परा का परिपालन करते हुए मणिकारों (जौहरियों) ने इसेएक वंशानुगत थाती के रूप में स्वीकार करते हुए इस व्यवसाय को विस्तार प्रदान किया। पाणिनी ने अष्टाध्यायी में मणिकर्म के सम्बंध में लिखा है कि लौहितक संभवतः माणिक्य या लाल की संज्ञा थी।[27] ''अग्रवाल का अनुमान है कि पद्मरागएक रत्न का नाम था और लौहितक उसकी अपेक्षा हीन प्रकार का प्रस्तर होता था। मीतचन्द्र का विचार है कि लालसागर में मरकत नामक बंदरगाह से आने के कारण पन्ने का नाम मरकत पड़ा।[28]

सातवाहन काल में मणिमुक्तायें समुद्र, सरिता तथा पर्वत आदि से प्राप्त की जाती थी। मणिकारों का व्यवसाय अपने प्रविधि, वर्ण, आकार प्रकारएवं सरलता में इतनी उच्च कोटि का था कि तत्कालीन विदेशी बाजारों में इसकी बड़ी मांग थी।[29] ईसा की पहली शताब्दियों में रोमन साम्राज्य के वैभव–सम्पन्न नागरिकों में मोतियों और मणियों के आभूषण धारण करने का फैशन बढ़ गया था। अतः सातवाहन साम्राज्य में इनके उत्पादन और निर्यात पर अधिक ध्यान दिया गया। पेरिप्लस के वर्णनानुसार पहली शताब्दी ई. में दक्षिण भारत में मोतियों के उत्पादन के चार बड़े केंद्र थे–(प) पाण्ड्य राज्य में कोरकै (पप) मन्नार की खाड़ी (पपप) पाक जलडमरू–मध्य (पअ) बंगाल। प्लिनी ने इसी तरह काएक पाँचवा स्थान बम्बई के निकट आधुनिक चोल नामक स्थान बताया, जिसका पुराना नाम सैम्मिला था।[30] सातवाहन युग में भारत अपने बहुमूल्य रत्नोंएवं मणियों के लिये प्रसिद्ध था। प्लिनी[31] नेऐसे रत्नों कीएक लम्बी सूची दी है। इनमें शामिल हैं – पन्ना, उत्पल, गोमेद, ओनिक्स, सार्डोनिक्स, कार्बकल, कार्नेलियन,एमिथिस्ट, हिआसिंथा आदि।

टॉल्मी के कथनानुसार उन दिनों हीरा का प्रमुख उत्पत्ति स्थान कोस नामक नगर, सबराई प्रदेश तथाएडमास नदी का मुहाना था। इसकी पहचान क्रमशः वर्धा नदी वाले बरार के प्रदेश, सबंलपुर के प्रदेश और वैतरणी नदी की सांक नामक शाखा से की गई है।[32] सातवाहनकालीन भारत में सुशिक्षितएवं सुसंस्कृत व्यक्ति के लिए यह आवश्यक समझा जाता था कि वह विभिन्न प्रकार के रत्नों की परीक्षा करने में कुशल हो। दिव्यावदान[33] से ज्ञात होता है कि उन दिनों व्यापारियों के पुत्रों को इस कला की नियमित रूप से शिक्षा दी जाती थी। वात्सयायन[34] ने कामसूत्र में चौसठ कलाओं (अंगविद्या) में रूप्य रत्नपरीक्षा को भी सम्मिलित किया है।

**(अपप) धात्विय उद्योगः**

प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मूल परिवर्तनकारी कारकों में धातुओं का स्थान सर्वोपरि हैं। धातु–निर्मित आयुधोंएवं उपकरणों ने भारतीय उद्योगएवं व्यापार को अप्रतिम ढंग से बढ़ावा दिया। आर्थिक संरचना के मूल में भी धातु उद्योग ही प्रमुख था।[35] सातवाहन युग के उद्योगों तथा खनिज संपति पर प्रकाश डालने वाली सामग्री बहुत कम है। पेरिप्लस मे दक्षिण भारतीय लौह उद्योग की प्रशंसा की गई है। उनके मतानुसार दक्षिण भारत में लोहे और फौलाद की वस्तुयें बड़ी अच्छी और उत्कृष्ट कोटि की होती थी और इतनी प्रचुर मात्रा में बनाई जाती थी कि इनका निर्यात काठियावाड़ के प्रदेश याएरिका से पूर्वी अफ्रीका के देशों को किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि उस समय यहाँ लौहा पर्याप्त मात्रा में मिलता था और लौह उद्योग विकसित दशा में था। किन्तु लोहे के अतिरिक्त अन्य धातुओं का सातवाहन साम्राज्य में अभाव था।[36] प्लिनी ने लिखा है कि दक्षिण भारत में न तो कांसा होता है और न ही सीसा। सातवाहन साम्राज्य इन धातुओं को अपनी बहुमूल्य मणियों और मोतियों के बदले विनिमय द्वारा विदेशों से प्राप्त करता है। सातवाहन काल में निम्नलिखित धातु–उद्योगों के प्रचलन का वर्णन मिलता है–

---

[10].वही
[11].मैक्रिन्डल–क्लासिकलएकाउन्ट्स ऑफ इण्डिया, पृ. 140–143
[12].पूर्वोक्त, पृ. 122
[13].दिव्यावदान : 18.2, 18.3, 18.4
[14].वासुदेव शरण अग्रवाल–भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1977 पृ. 255–256, चित्र सं. 390–91
[15].दिव्यावदान – 3.16, 23.7, 3.1
[16].अवदान जिल्द–1.63, 6, 9; बुद्धचर्या 22.8
[17].एपिग्राफिया इंडिका–11, पृ. 35, 39
[18].अवदान 2.216.17; 2.360.2
[19].जयचन्द्र विद्यालंकार–भारतीय इतिहास की रूपरेखा, इलाहाबाद, 1933 पृ. 970
[20].ई.जे.रैप्सन – क्वायन्स ऑफ आन्ध्राज, पृ. 34
[21].के.डी. वाजपेयी–भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, 1951 पृ. 87
[22].ऋग्वेद, 8.3.38
[23].महावग्ग – 5.13.6
[24].शाफः पेरिप्लस ऑफएरिथ्रियन सी, 39.6
[25].नारदस्मृति–1
[26].नन्दजी राय–पूर्वोक्त, पृ. 54–55
[27].अष्टाध्यायी, 5.4.30
[28].वासुदेव शरण अग्रवाल–पाणिनीकालीन भारतवर्ष, वाराणसी, 1969 पृ. 225
[29].नन्दजी राय–पूर्वोक्त, पृ. 57
[30].हरिदत्त वेदालंकार – प्राचीन भारत का राजनीतिकएवं सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1972, पृ. 528
[31].प्लिनी–नेचुरल हिस्ट्री – 27/76
[32].हरिदत्त वेदालंकार–पूर्वोक्त, पृ. 529
[33].दिव्यावदान – पृ. 26, 100
[34].वात्स्यायन–कामसूत्र, 1/3/16
[35].नन्दजी राय–पूर्वोद्धत, पृ. 57
[36].हरिदत्त वेदालंकार–पूर्वोक्त, पृ. 526

**क) स्वर्ण–उद्योग–**

बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि सातवाहन काल में सार्थवाह सुवर्णभूमि[37] आयसनगर,[38] कुरुद्वीप,[39] राक्षसीद्वीप[40] तथा बदरद्वीप[41] रत्नद्वीप[42]एवं ताम्रद्वीप[43] आदि देशों को आते जाते रहते थे और वहीं से वे विविध रत्न और स्वर्ण आदि भी लाते थे। इसमें अनेक प्रकार के आभूषणोंएवं अलंकरणों का उल्लेख है, किन्तु उन सब में स्वर्ण–आभूषणों का ही प्रचलन समाज में सर्वाधिक था। उन आभूषणों में कुछ महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित थे : शीर्षाभरण, कर्णाभरण और ग्रीवाभरण आदि। स्वर्णाभूषणों के इन विवरणों से स्वर्ण उद्योग की विकसित अवस्था का पता चलता है।

**(ख) रजत–उद्योगः–**

प्राचीन भारत के धातु उद्योगों में रजत उद्योग का भीएक महत्त्वपूर्ण स्थान था। रजत के विविध प्रयोगों से यह प्रमाणित होता है कि रजत–उद्योग उन दिनों संभवत प्रगतिशील स्थिति में था। अष्टाध्यायी में रजतएवं इसके अलंकरण रूप में कर्णिका तथा त्रत्राटिकों को पण्य वस्तु के रूप में उल्लिखित किया है।[44] अष्टाध्यायी में कार्षापण और पण दोनों नाम उल्लिखित हैं।[45] संभवतः चांदी के सिक्के का नाम कार्षापण और ताम्बे के सिक्के का नाम पण था। चांदी की विविध मुद्रायें प्रमाणित करती हैं कि इस काल में रजत उद्योग पर्याप्त विकसित अवस्था में था। व्यापार में इन मुद्राओं का प्रचलन भी पर्याप्त था।[46]

चाँदी के प्राप्ति स्थल के संबंध में स्ट्रैबो का कथन है कि चांदी की खाने पंजाब के साल्टरेंज के निकट थी। संभवतःयह स्थान कुब्ली घाटी रहा होगा।[47] भारतीय चांदी का सर्वप्रथम उल्लेख यूनानी यात्री टेसियल द्वारा मिलता है।[48] उसने लिखा है कि चाँदी की खानें बैक्ट्रिया की तरह भारत में गहरी नहीं थी। मिस्र और सातवाहन साम्राज्य के बीच बढ़े हुए व्यापार की पुष्टि टॉलमी का चांदी का सिक्का 'सोटर' करता है, जिसे डुल्टज ने बंगलौर से प्राप्त किया था। विद्वानों का अनुमान है कि यह अन्य कितने ही सिक्कों के साथ मिश्र–साम्राज्य से उन सातवाहन साम्राज्य की वस्तुओं के बदले में यहाँ आया होगा, जिनका निर्यात मिस्र को होता था। प्लिनी का कथन है कि दक्षिण भारत से चांदी रोम को जाती थी।[49]

सातवाहन काल में विदेशी व्यापार की ओर यथेष्ठ ध्यान होने के कारण देश में अनेक उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन मिला। इस युग में चांदी के छोटे बर्तन और खिलौने निर्यात किये जाते थे और दक्षिण भारत में बड़ी संख्या में चांदी के सिक्के रोम से आते थे, जिनकी पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से होती है।[50] संस्कृत और बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि सौवर्णिक[51] शिल्पियों की व्यवस्था के अन्तर्गत सोने–चांदी के उद्योग चलते थे। इस समय व्यवसायएवं व्यापार के विनिमय के माध्यम के रूप में निष्क, कार्षापण तथा माषक आदि प्रयुक्त होते थे।[52]

छठी शताब्दी ई.पू. से तीसरी शताब्दी तक के काल से रजत–उद्योग के पुरातात्त्विक प्रमाणों में मुख्यतः मौद्रिक प्रमाण ही हमें उपलब्ध हैं। छठी शताब्दी ई.पू. से लेकर ईसवी सन के प्रारंभ तक का रजत उद्योग का विकासात्मक स्वरूप वस्तुतः रजत मुद्राओं का ही इतिहास है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रजत व्यवसायएवं व्यापार इस काल में विकसित अवस्था में थाएवं सातवाहन साम्राज्य की आर्थिक संरचना में इसका प्रमुख योगदान था।[53]

**(ग) ताम्रएवं कांस्य उद्योगः**

नगरीय सभ्यता की वर्तमान गति के साथ ही धातु उद्योग की प्रविधि प्रक्रिया का विकास भी हुआ। धातु युग में तमम् अथवा तमस् शब्द से ताम्र धातु विकसित हुई। पाणिनी ने अनेक धातुओं के विवरण में ताम्रयस का उल्लेख किया है।[54] उन्होंने ताम्र मुद्राओं के विवरणों में पण व पाद के बाद माष का उल्लेख किया है।[55] पाणिनी का यह उल्लेख धातु प्रविधि की ओर संकेत करता है जिसके आधार पर ताम्र उद्योग के विकसित होने का अनुमान ईसा पूर्व की अंतिम शताब्दी में लगाया जा सकता है।

पालि साहित्य में भी लोहे से भिन्न तम्ब (ताम्र) का उल्लेख अयस के साथ किया गया है।[56] बौद्ध ग्रंथ मिलिन्दप×हों में भी कांस्य पात्रों का उल्लेख है।[57] पेरिप्लस में आया है कि ताम्र और टीन पश्चिम बाजारों से भड़ौच और कोचीन के बंदरगाहों पर आते थे।[58] प्लिनी के अनुसार दक्षिण भारत में हीरे जवाहरातों से कांस्य और टीन का विनिमय बाहर से किया जाता था।[59] परन्तुएक उल्लेख में प्लिनी का कथन है कि पर्सियन की खाड़ी और लाल समुद्र के बंदरगाहों से होकर दक्षिण भारत से तांबा विदेशों को जाता था। पेरिप्लस के अनुसार भड़ौच बंदरगाह से अपोलोगस तथा ओमान के लिए दक्षिण भारत से ताम्बा जाता था।[60] पेरीप्लस और प्लिनी के इस आयात और निर्यात के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि बाहर से कुछ ताम्र दक्षिण भारत में आयात किया जाता था और यहाँ शुद्ध करके पुनः ताम्र और ताम्र निर्मित सामानों को विदेशों को भेजा जाता था।[61] स्ट्रैबों का कथन है कि दक्षिण भारत ताम्र से मेज, ऊंची कुर्सी, स्नान के टब और पान के थालों का निर्माण करते थे।[62]

संस्कृत तथा बौद्ध साहित्य में तत्कालीन आर्थिक जीवन का विवरण यद्यपि बिखरे रुप में मिलता है। तथापि इससे सिद्ध होता है कि शक–सातवाहन–कुषाण काल में विभिन्न औद्योगिक श्रेणी समूहों द्वारा धातु उद्योग का प्रबन्ध किया जाता था। महावस्तु मे जिन अठारह श्रेणी समूहों का उल्लेख है, उसमें ताम्रकुट्टक का भी विवरण है।[63] ताम्रकुट्टक खाने–पीने के काम में आने वाले बर्तन बनाते थे जो शिल्प–कला की दृष्टि से उत्तम होते थे।[64] व्यापार व्यवसाय के विनिमय के लिए विविध प्रकार के सिक्के प्रचलित थे। इन मिश्रित तथा शुद्ध ताम्र–मुद्राओं के प्रचलन से तत्कालीन ताम्र उद्योग की प्रवर्धित स्थिति का ज्ञान होता है।[65]

**(घ) लौह–उद्योगः**

प्राचीन भारत में लौह धातु–कर्म समाज मेंएक वर्ग विशेष का पूर्णकालिक उद्योग था। यह वर्ग कर्मारों अथवा लोहारों का था। कर्मार अपने कर्मशाला में भस्त्रा (भाठी) अयोधन (हथौड़ा), दुधन (कुल्हाड़ी) तथा कुटिलक (संडासी) आदि द्वारा लोहे के उपकरणों का निर्माण करते थे। कर्मार को कौटिलक की संज्ञा दी गई है।[66]?सातवाहनकाल की आर्थिक संरचना के महत्त्वपूर्ण उपादान लौह–धातु उद्योग का विवरण संस्कृतएवं बौद्ध साहित्य में उल्लिखित है। लौह–उद्योग का संयोजनएवं प्रबंधन लोहकारक श्रेणी[67] द्वारा किया जाता था। तत्कालीन कर्मकार अपनी कर्मशाला में बैठ कर अपना कार्य करते थे। समकालीन विकसित धातु उद्योग में लोहकार का स्थान सम्माननीय था। लोहे की बनी हुई वस्तुओं का विदेशों में भी व्यापार होता था।[68]भारतीय लौह–उद्योग प्रविधि के लौह–प्रगलण अथवा इस्पात उत्पादन का जहां तक संबंध है, उस पर किसी भी प्रकार के विदेशी प्रभाव का कोई प्रमाण ज्ञात नहीं होता। लेकिन प्रथम शताब्दी ईसवी के लगभग कतिपय उपकरणों पर कुछ विदेशी प्रभाव की संभावना अवश्य व्यक्त की जा सकती है। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि भारत में लौह–उद्योग प्राचीन काल से ही विकसित तथा व्यवसाय व्यापार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था।[69]

---

[37].दिव्यावदान, 67–30–34
[38].उपरोक्त – 4.24, 5.11
[39].ललितविस्तार, 170.15–16 (मित्रा); महावस्तु 3.72.18
[40].महावस्तु, 3.68.9, 3.2.10.–11
[41].दिव्यावदान, 64.18–20
[42].सौंदरानन्द 15.27
[43]. दिव्यावदान–453.2, 7, 14, 17, 31
[44].अष्टाध्यायी 3.2.82 4.3 .63
[45].वही 5.1.29
[46].नन्दजी राय–पूर्वोक्त, पृ. 60
[47].डी.एम. वाडिया : जियोलाजी ऑफ इण्डिया, पृ. 508–09
[48].मैक्रिण्डल – टेसियल की निदियन, पृ. 16, स्ट्रैबो 15.1.30
[49].हरिपद चक्रवर्ती–ट्रेडएण्ड कॉमर्स ऑफएंशियंट इण्डिया, कलकता, 1966, पृ. 278
[50].नन्दजी राय–पूर्वोक्त, पृ. 61
[51].महावस्तु 3.144.4
[52].दिव्यावदान : 49.1.18.28; 20.13
[53].नन्दजी राय–पूर्वोक्त, पृ. 61–62
[54].अष्टाध्यायी, 3.2.182
[55].अष्टाध्यायी – 5.1.34
[56].दीघनिकाय, 2.35
[57].मिलिन्दप×हों–1 पृ. 3
[58].पेरिप्लस 49
[59].प्लिनी–नेचुरल हिस्ट्री 34.17
[60].पेरीप्लस 36;
[61].हरिपद चक्रवर्ती – पूर्वोक्त, पृ. 253
[62].स्ट्रैबो 15.69;आर.सी. मजूमदार–क्लासीकल आकउंट ऑफ इण्डिया, पृ. 280–31
[63].महावस्तु जिल्द 3.113.6–19
[64].पूर्वोक्त जिल्द 2.469.1
[65].नन्दजी राय–पूर्वोक्त, पृ. 63
[66].अष्टाध्यायी – 3.3.82–96
[67].महावस्तु जिल्द – 3.442.12–14
[68].ललितविस्तार– 491.9 (मित्रा)
[69].नन्दजी राय, पूर्वोक्त, पृ. 67